April 2015 - Jun 2015, Vol. I , No. II 157-164 e ISSN 2394-9449

Electronic Journal of Advanced Research

An International Peer Review E- Journal of Advanced Research

www.ejar.co.in

^^fgUnh dk0; e _rjkt d jx**

Mk- onuk f=ikBh[1]

1. सहा. प्राध्या. हिन्दी, शास. कन्या महावि., रीवा (म.प्र.)

Received: 20/06/2015 **Revised:** 29/06/2015 **Accepted:** 30/06/2015

सखि बसन्त आया।

भरा हर्ष वन के मन,

नवोत्कर्ष छाया

लता–मुकुल–हार–गन्ध–भार भर

वही पवन बन्द मंद मन्दतर,

जागी नयानों में वन यौवन की माया।

स्वर्ण शस्य अॅचल, पृथ्वी का लहराया।

सखि बसन्त आया।।[1]

निराला की इन पंक्तियों से मन उल्लास से भर उठता है, मानों धरती ने श्रृंगार कर लिया हो–नव वधू की भॉति, मानो एक त्योहार की सुगंध चारों ओर व्याप्त हो गयी हो। हमारा देश त्योहारों का देश है, यहॉ प्रत्येक अवसर को त्योंहार के रूप में मनाकर अपनी भावनाओं का उल्लास प्रकट किया जाता है। हमारे देश में त्योहार केवल धार्मिक, सामाजिक अवसरों को ध्यान में रखकर ही नहीं मनाए जाते बल्कि ऋतु परिवर्तन के अवसरों का भी पर्व के रूप में ही स्वागत किया जाता है। ऋतु परिवर्तन का ऐसा ही एक मुख्य पर्व है–बसन्त पंचमी। यह ऋतु ऋतुराज के रूप में अलंकृत है। यह ऋतु अपने साथ परिवर्तन लेकर आती है–कभी सूखकर दरकती धरती, तो कभी उसे रिमझिम फुहारों से भिगोकर मनाने की चेष्टा करता मौसम, कभी शरद की कुनकुनी धूप तो कहीं घने, हल्के

कोहरे, मानों जैसे मानव मन की बदलती दशाएँ प्रकृति में प्रतिबिम्बित हो रही है–महाकवि निराला ने इस परिवर्तन का चित्रण अपनी कविता में अत्यन्त मनोहारी ढंग से किया है–

''अलि, घिरि आए घन पावस के।
लख ये काले काले बादल
नील सिन्धु में खुले कमल दल
हरित ज्योति, चपला अति चंचल
सौरभ के, रस के
अलि घिरि आए घन पावस के।''[2]

एक और दृश्य देखिए –

''रूखी री यह डाल,
बसन बासन्ती लेगी।
देख खड़ी, करती तप अपलक
हीरक–सी–समीर–माला जप
शैल–सुता अपर्ण–अशना
पल्लव, तसना बनेगी–
तसन बासन्ती लेगी''[3]

हिमालय के शिखरों तक हल्के घने कोहरे का फैला ऑचल, बीच–बीच में मखमली कोमल धूप–लगता है कवि की कल्पनाएँ साकार हो उठी हैं–नागार्जुन का मन भी इससे अछूता नही रहा। बसन्त की मधुर हिलोरें उनको आल्हादित कर रही हैं–नागार्जुन का मन भी बासन्ती हो रहा है–

''अमल धवल गिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है।
छोटे–छोटे मोती जैसे, उसके शीतल तुहिन कणों को
मान–सरोवर के उन स्वर्णिम, कमलों पर गिरते देखा है
बादलों को घिरते देखा है।''[4]

बसन्त ऋतु में चारों ओर पीली सरसों लहलहाने लगती है, मानव मन अद्‌भुत आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। ऋतुराज के आते ही शरद ऋतु की बिदाई के साथ ही पेड़–पौधों और प्राणियों में जीवन का संचार होता है, सभी गीतों में मदमस्त होकर झूमने लगते हैं, ये

गीत होते हैं–प्रेम के, यौवन के, प्रेम से भरे हृदय के खिलने और बिखरने के भी। सारी प्रकृति मानों संयोग वियोग के गीत गाती दिखनें लगती है। बाबा नागार्जुन की पंक्तियों का आनन्द लीजिए–

''ऋतु बसन्त का सुप्रभात था
मंद मंद था अनिल बह रहा
बालारूण की मृदु किरणें थी
अगल बगल स्वर्णाभ शिखर थे
एक दूसरे से विरहित हो
अलग अलग रहकर ही जिनकों
सारी रात बितानी होती
निशाकाल से चिर अभिशापित
बेबस उस चकवा–चकई का
बंद हुआ क्रन्दन फिर उनमें
उस महान सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय कलह छिड़ते देखा है।''[5]

इस मौसम में कोयलें कूक–कूक कर बावरी होने लगती हैं, भौरें इठला कर मधुपान करते है। परन्तु नागमती अपने स्वामी के विरह में विह्वल हैं, सभी को बसन्त का आनन्द उत्सव मनाते देख, उन्हें आनन्दित देख दुख और ईर्ष्या से व्याकुल हो कह उठती हैं–

''चैत बसन्ता होई धमारी। मोहि लेखे संसार उजारी।।
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोई सगरौं बन ढारै।।''[6]

जायसी की इस नायिका की भांति घनानन्द की नायिका भी बिरहाकुल होकर कह उठती है–

''कारी क्रूर कोकिला, कहॉ को बैर कढ़ति री
कूकि–कूकि अब ही, करेजों किन कोरि लै।
आनन्द के घन प्रान जीवन, सुजान बिना
जानि कै अकेली कब, घेरो दल जारि लै।।''[7]

निराला की नायिका भी अपने मन की पीड़ा को रोक नहीं पाती। उसका मन अत्यन्त व्याकुल है, वह भी इस ऋतु में अपनी पीड़ा को व्यक्त कर ही देती है –

''छोड़ गये गृह जबसे प्रियतम
बीते अपलक दृश्य मनोरम
क्या मै हूँ ऐसे ही अक्षम
जो न रहे बस के
घिरि आए घन पावस के''[8]

बसन्त ऋतु का सौन्दर्य हिन्दी कविता मे हमेशा से कवियों को लुभाता रहा है। उनके रचना कर्म का प्रमुख विषय बना रहा है। बसन्त का चित्रण कवि मुक्त हृदय से करता है। मन का आनन्द, उल्लास, प्रसन्नता, उद्विग्नता, पीड़ा सभी को व्यक्त करता हैं जी भर कर। गिरिजा कुमार माथुर की इस कविता में नववधू की प्रसन्नता की अभिव्यक्ति अत्यन्त दर्शनीय है–

''आज हैं केसर रंग रंगे वन
रंजित शाम भी फागुन की
खिली पीली कली सी
केसर के बसनों में छिपा तन
सोने की छॉह सा, बोलती ऑखों में
पहिले बसन्त के फूल का रंग है
गृह, द्वार, नगर, वन
जिनके विभिन्न रंगों में है रंग गयी
पूनों की चन्दन चॉदनी।''[9]

निराला ने वासन्ती निशा में जुही की कली की अवस्था का अत्यंत मनोहारी चित्रण विरहिणी नायिका की भॉति किया है। बसन्त ऋतु में मानों प्रकृति का प्रत्येक अंश सजीव हो उठता है और अपने आत्मीय सौन्दर्य से सराबोर हो जाता है। कवि कहते हैं–

''विजन वन बल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी–स्नेह–स्वप्न–मग्न
अमल कोमल–तनु तरूणी–जुही की कली
दृग बन्द किए, शिथिल पत्रांक में–

वासन्ती निशा थी
विरह–विधुर–प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।''[10]

महाकवि निराला की लेखनी से प्रस्फुटित बसन्त का अन्य चित्र अत्यंत मनोहारी बन पड़ा है–

''घेर अँग–अँग को
लहरी तरंग वह प्रथम तारूण्य की
खिले नव पुष्प जग प्रथम सुगन्ध के
प्रथम बसन्त में गुच्छ गुच्छ
दृगों को रंग गयी प्रथम प्रणय रश्मि''[11]

ऐसी ही कुछ भावनाएँ नागार्जुन भी प्रस्तुत करते हैं–

''बहुत दिनों के बाद
अबकी मैने जी भर भोगे
गंध, रूप, रस, शब्द, स्पर्श
सब साथ–साथ,
इस भू पर
बहुत दिनों के बाद''12

बसन्त ऋतु अत्यन्त मोहक और लुभावना सृजन कर्म है रचनाकारों के लिए। उमंग और उल्लास लिए बसन्त ऋतु नवीनता का प्रतिमान है जो समूची धरती में तथा मानव मन एवं जीवन में इन्द्रधनुषी रंग भर कर उसे रंगीन बना देता है। उसमें नवीन चेतना आरोपित कर देता है और हरेक के हृदय को अनुराग से भर देता है।

मैं प्रभाकर माचवे जी की ''बसन्तागंम'' कविता के माध्यम से आपके समक्ष बसन्त का अत्यंत रमणीय दृश्य प्रस्तुत कर अपनी वाणी को विराम दूंगी–

''गा रे गा हरवाहे, दिल चाहे वही तान
खेतों में पका धान
मंजरियों में फैला आमों का गंध ध्यान
आज बने हैं कल के ज्यों निशान

फूलों में फलने के है प्रमाण
खेतिहर लड़की की भोली सी ऑखों में
निम्बुओं की फांकों में, मुस्काता अज्ञान
हॅसता है सब जहान
खेतों में पका धान
मधु ऋतु रानी महान
मानिनी, बासन्ती रंग चोली झलके जिसकी
ढलके ऑचल धानी, लहरा सा
ऑखों में आकर्षण भी खासा
युग युग का प्यासा सा छलके
दिलासा जहॉ
उतरी उन सरसों के खेतों पर मायाविनी
हलके हलके हलके।
फूल में छिपे निशान हैं फल के
उतरी बासन्तिका
तहलका सा छाया तरू दुनिया में,
छुटा भान
स्वागत में कोकिला का,
पिण्डुकी का जुटा गान
आशा ही आशा हैं
आज निर्बन्ध, उष्ण अरूण प्रेम परिभाषा
पल्लव की पल्लव से सुरभिमय यही भाषा
आशा ही आशा हैं
बासन्ती की दिगन्त रिनि निनमयी शिंजनियॉ
पड़तीं ज्यों भनक कान
परिवर्तित लक्ष लक्ष
श्रुतियों में रोम रोम
पंखिल हैं पंच प्राण

गा रे गा हरवाहे, छेड़ मन चाहे राग
खेतों में मचा फाग।''[13]

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. निराला, अपरा, बसन्त आया, पृष्ठ–22
2. निराला, अपरा, आए घन पावस के, पृष्ठ–73
3. निराला, बसन, वासन्तीलेगी, पृष्ठ–58
4. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, बादल को घिरते देखा है, पृष्ठ–63
5. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, बादल को घिरते देखा है, पृष्ठ–64
6. जायसी, पदमावत, पृष्ठ–34
7. घनानन्द, प्रसाद द्वारा संपादित घनानन्द संग्रह, पृष्ठ–117
8. निराला, अपरा, आए घन पावस के, पृष्ठ–74
9. गिरिजा कुमार माथुर, तार सप्तक, संस्करण, 2000, आज हैं केसर रंग रंगे वन, पृष्ठ–147
10. निराला, अपरा, जुही की कली, पृष्ठ–11
11. निराला, अपरा, प्रेयसी, पृष्ठ–122
12. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, बहुत दिनों के बाद, पृष्ठ–71
13. प्रभाकर माचवे, तार सप्तक, संस्करण 2000, बसन्तागम, पृष्ठ–115.116